

₹ 30/-

साहित्य अमृत

अगस्त 2021 • साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक • मासिक • पृष्ठ 84 • ISSN 2455-1171



दोपहरी

• वंदना यादव

“दि

न छोटे होते जा रहे। पहिले तो दोपहिया में घर जाती रही, अब यहीं फूल पत्तों के संग बईठती हूँ पारक मा। साम का काम खतम करके एकही बार जाऊँगी घर।” ऊँची-ऊँची रिहायशी इमारतों के बीच बने बगीचे में बैठी शगुन मोबाइल पर किसी को अपनी दिनचर्या की ताजा जानकारी दे रही थी।

“ऐ सगुनी, तू बजार गई थी न, ले आई लछमी-गणेश?” सुबह-शाम साथ आने-जाने वाली प्रिया भी अपना काम खतम करके बगीचे में जमने वाली मंडली में शामिल होने पहुँच गई।

“ना, अभी पगार कहाँ मिली? हाथ में पैसा होगा तबही ना खरदेंगे; क्यूँ तू ले आई का?”

“कब लाई? पैसा हाथ-पल्ले होगा तबही लाएँगे, अभी पगार कहाँ मिली?” दोनों की परेशानी एक जैसी थी।

“कितनी भी कोशिश करके देख लेओ, सात-आठ तारीख से पहले ना मिलने की पगार।” कृष्णा अपने खालिस उत्तराखंडी लहजे में बड़बड़ाती हुई बगीचे के गहरी छाँया वाले नीम के पेड़ के नीचे आ पहुँची।

“कहने को ये लोग महँगे-महँगे फ्लैट में रहती हैं, पर एक तारीख को इनकी जेब में पल्ली नहीं होती हमारे हाथ में धरने को...” कहती हुई वह धम्म से हरी घास पर बैठ गई। जितना गुस्सा उसे तनखाह न देने वाली फ्लैट में रहने वालियों पर आ रहा था, वह सब उसने धरती पर उतार दिया।

“इहाँ तो सब जगह दोनू कमाने वाले लोग ही रहते हैं। करोड़, दो-करोड़ के फ्लैट में रहते हैं जे लोग, पैसे की कोनो कमी नहीं है इनके पास, पर उ जानती हैं कि इधर एक तारीख को पैसे दिए उधर अगले ही दिन तुम बिन बताए उसका काम छोड़कर जहाँ दो पैसा जादा मिलेगा ऊ घर पकड़ लेओगी। तुम्हारे लच्छन ऐसे हैं तबही ना।” शगुन ने उसे



लेखक, मोटिवेशनल स्पीकर, एंकर एवं समाज-सेविका। ‘कितने मोर्चे’ उपन्यास के साथ ‘अब मजिल मेरी है’ मोटिवेशनल पुस्तक सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं में मानसिक स्वास्थ्य, महिला अधिकारों एवं समसामयिक विषयों पर निरंतर लेखन। ‘सृजन साहित्य’ सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

आईना दिखाया।

“मेरे लछन...” तुमको भी तो नहीं मिली पगार, फिर तुम्हारे लच्छनों को का हुआ, हूँ?” कृष्णा ने शगुन की आँखों में आँखें डालकर भीहों को सवालिया अंदाज में घुमाते हुए कहा।

“गुस्सा तो तुम्हारे नाक पे धरो रहत है। तोहार बात ना कह रहे, उन फ्लैट वालियन की कह रहे। उ यही तो कहती हैं, हम सबके बारे में तबही पाँच-सात दिन ऊपर चढ़ाकर पैसा देती हैं कि कोई बीच में काम ना छोड़ देवे।” तीनों के अतिरिक्त दोपहर को सुस्ताने पहुँची मंडली की कुछ ओर सखियाँ इस बात पर फीकी सी हँसी हँस दीं।

“तुम्हारे लिए दीवाली बड़ा त्योहार है, है ना।” सोमिष्ठा शुरुआत के मुद्दे पर लौट गई।

“क्यूँ तुम्हारा नहीं है? दीवा नहीं जलाओगी घर के बाहर?” शगुन ने उसे आड़े हाथों लिया।

“दीवाली बाद में आएगा, हमारा तो उससे पहले ही पूजा शुरू हो जाता है...” दुर्गा पूजा। हमारे लिए एक दिन का त्योहार नहीं है ना, पूरा नौ दिन का पूजा होता है।” सोमिष्ठा ने अपने अंदाज में कहा।

“दस दिन दुर्गा पूजा उसके बाद दीपावली भी।” प्रिया ने चेहरे से पसीना पोछकर मास्क को दोबारा मुँह पर लगाते हुए कहा। वह त्योहारों की लंबी कतार पर हैरान थी।

“हाँ! हमारा बड़ा त्योहार दुर्गा पूजा है, जैसे तुम्हारा दीवाली! एतना

दिन का पर्व और किसी का नहीं होता।" सोमिष्ठा शायद अपनी संस्कृति के बारे में कुछ ओर भी बताती मगर उसकी बात बीच में काटना सुप्रिया के लिए जरूरी हो गया था।

"हमारा भी तो दस दिन का पूजा होता है गणपति बप्पा की स्थापना से लेकर विसर्जन तक। सारा घर पीले रंग में रंग जाता है। मोदक का परसाद और सुबह-साम की आरती, भोग लगाना अउर सारा दिन लोगों का आना-जाना लगा रहता है।" इतना कहने के साथ ही "गणपति बप्पा मोरया अगले बरस तू जल्दी आ" का जाप ना जाने कब उसके मुँह से शुरू हो गया। सारी सहेलियों ने उसके साथ अपने-अपने अंदाज में गणपति बप्पा को अगले वर्ष जल्दी आने की याद दिलवाई।

"यहाँ मनाई तुमने गणेश चतुर्थी?" कृष्णा ने पूछा।

"ये लो, कौन सी दुनिया में रहती हो तुम ? पूरे मोहल्ले ने मोदक का परसाद खाया, कीर्तन किए, फिर गणेशजी को जला में विसर्जन करने के लिए सारा मोहल्ला इकट्ठा हुआ।" इस बार सुप्रिया का माथा जैसे गर्व से ऊँचा हो गया था।

"इसको कइसे मालूम होंगा, तब ये हमारे साथ नहीं ना थी।" शगुन ने टोका।

"क्यों सुपरिया, तुम कहाँ थी ? आती-जाती तो अब भी नहीं हो हमारे साथ, कहाँ रहती हो ?" यह मंडली की स्थानीय सदस्य लक्ष्मी थी।

"यहाँ रहती हूँ।" सुप्रिया ने गहरा साँस छोड़ा।

"का हुआ, एको तुमही थोड़ी परसान हो, सबही को बरोबर मार पड़ी है। मन का बात को मन मा रखकर भी का कर लोगी ? बता ही दो।" शगुन ने टेढ़े बिहारी अंदाज में नसीहत दी।

"का बताएँगे, सब तो मालूम है। जो सबके साथ हुआ, वही हमारे साथ हो रहा है। बस किसी तरह रोटों का गुजारा कर ले रहे हैं।" आने वाले त्योहारों की रीनक जिस तरह आई थी, उसी तेजी से सबके चेहरों से गायब हो गई।

"का हुआ तुमरी नौकरी को ? इहाँ कइसे पहुँची भाई !" मंडली से आवाज आई।

"ये इसकूल है ना (सुप्रिया ने उँगली के इशारे से विशालकाय इमारत की ओर सबका ध्यान खींचा) उहाँ छोटे बच्चों की किलास में एक मैडम पढ़ाती है और एक सहायिका रहती हैं, हम ओ ही थे, सहायिका। इसकूल बंद होने से मैडम के साथ-साथ हमारी नौकरिया भी जाती रही।"

किसी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। मौके पर मौजूद सभी सहेलियों की जीभ इस चिर-परिचित स्वाद से एक बार फिर कसैली हो

गई। जिस सच्चाई को भुलाकर उनमें से कुछ अपने एक घंटे की छुट्टी का आनंद लेने पहुँची थीं, वे सभी इस स्वाद को गुठके की पीक के समान थूक देना चाहती थीं, मगर वह सबके मुँह में अर्थव्यवस्था पर कोरोना वायरस की तरह जमकर बैठ गया था।

"परिवार कहाँ है तुम्हारा ?"

"इस इसकूल में मेरा पति पिरिसीपल ऑफिस का काम देखते रहे, हम दोनों की नौकरी एको साथ चली गई।" उसकी आवाज में मायूसी थी।

"तो कहाँ रहती हो अब ? का काम करती हो ?" गरीबी रेखा से नीचे का तबका भूख की इकलौती मार झेलता है, उनको मध्यम और उच्च वर्गीय लोगों के समान समाज में अपने मुकाम को लेकर झूठ, दिखावे और काम की सच्चाई छुपाने की दोहरी मार नहीं झेलनी पड़ती।

इस मामले में यह तबका दिखावट और झूठ पर विजय हासिल कर चुका है।

"इस टैम आदमियों की नौकरियाँ चली गई हैं, औरतें फिर भी घरों में काम-धाम करके अपने घर का चुल्हा जला ले रहीं। अब मैं ही काम करती हूँ। जैसे-तैसे करके काम चला ले रहे। उम्मीद है कि बिमारी खतम होगी और इसकूल खुलेंगे तो हमको दुबारा काम मिल जाएगा।"

"आजकल यहाँ हाल है सबका। बजार और काम बंद हुए हैं, तब से आदमियों की नौकरियाँ जाती रहीं, औरतें घरों में काम करके अपनी गृहस्थी खींच रही हैं। पहले कहते थे कि आदमी नहीं होगा, तब सब लोग भूखे मर जाएँगे। का खाएँगे ? पर अब तो यही है कि जिस घर में औरत नहीं है, वही लोग भूखे मर रहे हैं।" लक्ष्मी ने कहा।

"ठीक कह रही हो, हर परसानी से, हर जुग में औरत ने ही पार लगाया है। अपने परिवार की

नय्या हो या समाज की दुर्गा की पूजा भी तो तब ही करते हैं, वह औरत है, शक्ति का रूप।" लक्ष्मी ने निराशा की ओर बढ़ते माहौल को उम्मीद का टिमटिमाता दीपक थमा दिया।

"औरत और धरती, दोनों एक्को ही हैं। अपनी देह पर धरती सबकी पैदावार और पालन-पोसन करत है, औरत भी पैदा करने से लेकर जिनगी भर परिवार का पालन-पोसन करती है। हम ही शक्ति हैं जिज्जी।" कृष्णा को अपने महिला होने पर गौरव की सी अनुभूति हुई।

"हाँ, औरत ही तो देवी हैं, जिनकी पूजा होती है लाल साड़ी में।" इस बार सब सहेलियों ने प्रिया की बात पकड़ ली।

"लाल साड़ी, बहुत मन है तुम्हारा लाल साड़ी पहिनने का।" एक-दो इस बात पर हँसने लगीं।

"औरत और धरती, दोनों एक्को ही हैं। अपनी देह पर धरती सबकी पैदावार और पालन-पोसन करत है, औरत भी पैदा करने से लेकर जिनगी भर परिवार का पालन-पोसन करती है। हम ही शक्ति हैं जिज्जी।" कृष्णा को अपने महिला होने पर गौरव की सी अनुभूति हुई। "हाँ, औरत ही तो देवी हैं, जिनकी पूजा होती है लाल साड़ी में।" इस बार सब सहेलियों ने प्रिया की बात पकड़ ली। "लाल साड़ी, बहुत मन है तुम्हारा लाल साड़ी पहिनने का।" एक-दो इस बात पर हँसने लगीं।

“हाँ, करवा चौथ पर माँ-घर से आएगी हमारे लिए लाल साड़ी।” वह अपनी धुन में बोलती जा रही थी।

“हमारे त्योहारों की कथा तो हमको मालूम है पर तुम्हारे त्योहार की कोई खबर नहीं है। तुमको मालूम है क्या कि ये दुर्गा पूजा क्यों मनाई जाती है? बाजार में इसकी कोई कथा-कहानी की किताब भी तो नहीं मिलती।” लक्ष्मी ने सोमिष्ठा से कहा।

“गजब! यही सवाल आज हम अपनी सास को पूछे। उ कह रही थी कि अंगरेजन ने लड़ाई लड़ी थी, तबही से मनाना शुरू हुआ।” शगुन के अल्पज्ञान ने उसे प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों द्वारा मुगल शासक को युद्ध में हारने के इतिहास से अनजान ही रखा था। जब उसे युद्ध के बारे में जानकारी नहीं थी तब जान-माल के भारी नुकसान और हुक्मरान अंग्रेजों के प्रार्थना स्थल ध्वस्त करने के बाद हिंदू राजा की सलाह पर ईश्वर को धन्यवाद करने के लिए विशालकाय आयोजन से दुर्गा पूजा की शुरुआत की बात भी अजुबा ही थी।

“मैंने किताब में पढ़ा था कि अंग्रेजों ने हमारे लिए कुछ अच्छा काम भी किया था, जैसे दुर्गा पूजा। वैसे हमारे वहाँ बड़े उमर के लोग बताते हैं कि कई पीढ़ियों से चल रहा है दुर्गा पूजा। ज्यादा भी नहीं तो भी दो-चार सौ साल से तो मनाते ही होंगे।” सोमिष्ठा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को और बड़े आकार में खोलते हुए कहा। उसकी शिक्षा में अंग्रेजों ने सिर्फ दुर्गा पूजा तक ही काम किया था, शायद यहाँ तक उसकी रुचि रही होगी अन्यथा वह सती प्रथा और बाल विवाह के संबंध में भी जरूर कुछ कहती।

“हमारे गणपति पूजा का इतिहास भी ऐसा ही है, कई सौ साल पुराना। शुरू-शुरू में राजाओं के महलों में फिर मंदिरों में कैची जाति के लोगों ने मनाया। बहुत बाद में भाईचारे के लिए आम लोगों के बीच बप्पा आए। वैसे दो-चार सौ साल इसको भी हो गया है।” सुप्रिया ने परिवार में सुनी-सुनाई बातें दोहराते हुए दो सौ वर्षों के अंतराल को हवा में उड़ा दिया।

“ऐसो हुआ होगा तबही ना सब लोगन में त्युंहार मनावे की मंशा बनी रही। त्युंहार भी तो तबही जिंदा रहते।” बुंदेलखंडी लहजे में प्रिया ने आकलन किया।

“हाँ, हम गरीब लोग ही तो जिंदा रखे हैं त्युंहारन को, और का। उनके लिए तो मनोरंजन के भीत साधन हैं एक हम हैं जो गाम आना-जाना, त्युंहार मनाना करते हैं। बच गयो तुम्हारे गणपति बप्पा को त्युंहार। मंदिरन में बंद होतो तो बंद ही हो गयो हतो।” प्रिया ने अनजाने में ही वर्ग आधारित समाज और जनसंख्या के आँकड़ों की तस्वीर खींच दी।

“त्योहार तो सबही अच्छे पर छठ पूजा जैसा कठिन व्रत ओर नहीं। सबके यहाँ मूर्तियों की पूजा होती है, हमारे चार दिन की पूजा में

सब परकरती के लिए पूजा करते। सूरज, मिथुवी, जल और धरती पर पैदा होन वाली सब्जी, अनाज, फल-“छट मैया की पूजा में पूरा परिवार शामिल रहता है। सब बिहारियों का घर में पूजा होता ही है। टेकुआ बनता है, नियम बहुत कठोर है पूजा का।” वह बोलती जा रही थी।

“मालूम है तुमको, सब लोग पीला रंग पहिनते हैं।” जरूरी बात जो बतानी छूट गई थी, बात खत्म करने से पहले उसे याद आ गई।

“हमारा दुर्गा पूजा में भी सब दिन अलग-अलग तरह से पूजा होता है। प्रसाद का खिचड़ी तो तुमने खाया ही होगा। एक दिन सात सब्जियों के अलग-अलग पत्ता डाल कर भी सिर्फ पत्ता का शाक बनाते हैं।” बोलते समय अपनी बात को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सोमिष्ठा अपनी आँखों को ओर बड़ा खोल लेती थी।

“गणपति बप्पा की पूजा के दिनों में सोने जैसा रंग पहनते सब कोई। एकदम सुनहरी पीला रंग में रँग जाता है सबकुछ।”

सुप्रिया के लिए सबकी बात बीच में काटकर अपनी बात रखना जरूरी हो गया था।

“ऐ तुम यहाँ काहे आई भइ? यहाँ पर रहने वाले लोगन तो अपने गाम को भग गए और एक तुम हो कि उलटी दिसा को दीड़ीं!” प्रिया ने सोमिष्ठा को टोका।

“मैं जब इसकुल में पहुँची थी, किताबों में लिखा था कि दिल्ली जितनी बार उजड़ी, दोबारा बस गई। बस इसीलिए आई हूँ कि सबकुछ खत्म हो जाएगा, तब भी यहाँ कुछ ना कुछ तो बचेगा जरूर। और जब कुछ-ना-कुछ जरूर बचेगा तो उसमें हो सकता है हम भी बच जाएँ।” वह मुसकरा रही थी।

“तुमको जकीन है कि इहाँ वाले लोगन बच जाँगे।” एक गहरी आवाज उभरी।

“हूँ। लगता तो ऐसा ही है।”

“अगर बच गए ना, तब तो हम भी तोहरे साथ तुमरी दुर्गा पूजा मनावेंगे।” शगुन ने कहा, “तुम्हारे कौन सा रंग पहना जाता है पूजा में?” लक्ष्मी की जिज्ञासा अब तक शांत नहीं हुई थी। निरक्षरता इनसान की प्रगति में बाधाएँ डालती है। जानकारी जुटाने की सीमा भी इन्हीं में से एक है अन्यथा हाथ में पकड़ा मोबाइल जो अक्षर ज्ञान के आभाव में उससे खाली समय में वीडियो दिखाकर मनोरंजन के लिए उकसाता है, उसी से वह अपनी जानकारी बढ़ा सकती थी।

“हमारे नौ दिन, नौ दुर्गा की पूजा में हर दिन अलग-अलग रंग पहिनते हैं।”

“सुन रही हो जिज्जी, हमको तो लगत है कि पहले-पहल दिल्ली में पुरानी फिल्मों की तरियों सिर्फ तीन रंग होत। केसरिया-लाल लछमी पूजा अऊर दीबारी के लिए, सफेद गुरु पूब के और हरा ईद के दिन



का। हमको तो पूरा जकीन है कि यहाँ के लोगन को रंग हम बाहर से आकर बसे लोगन ने ही दिए हैं। मने, सगरे रंग हमारे हैं।" वह अपनी बात खत्म कर चुकी थी।

"यही नहीं पूरे देस में एक-दूसरी जगह से आकर बसे लोगन ने रंग भरे हैं, नहीं तो कम से कम दिल्ली के लोगन तो सिरफ तिरंगे कपरे ही पहनते।" उसने अपनी बात दोहराई।

"दिल्ली सहर इहाँ आसपास के रहने वाले हिंदुओं, सिक्खों और मुसलमानों का था। इहाँ इन लोगों के रीति-रिवाजों के मुताबिक ही कपड़े-लते मिला करते। अब सोचो कि अगर हमारे जैसे लोग यहाँ-वहाँ से आकर इहाँ अपना घर ना बसाते तो का होता!" कृष्णा की बात पर सब हँस पड़ी।

"इसका मतलब देश के झंडे का रंग था दिल्ली में। बाहर से आने वालों ने बाकी रंग दिए इसे।" लक्ष्मी ने अपना आकलन बताया।

"ब्लैक एंड व्हाइट फिल्मों की तरह देश की राजधानी दिल्ली, लाल सफेद और झरे रंग की रहती। जो गणपति और छठ पूजा के रंग हम लाए हैं, वो सोने से चमकते रंग यहाँ कभी ना आते।" लक्ष्मी की बात को अनसुना कर सुप्रिया ने अपनी संस्कृति पर गर्व करते हुए कहा।

"हम लोग नहीं आता तब हमारा दुर्गा पूजा का रंग भी तो 'हेलो' 'हेलो मैडम।' सोमिष्ठा अपनी संस्कृति के बारे में बताना चाहती थी, मगर बीच में आए फोन के कारण उसका वहाँ से उठ कर दूर जाना जरूरी हो गया।

"इसका मतलब दिल्ली को हमों ने रंगा।"

"हाँ, दिल्ली भी औऊर पूरा देश भी हमारे रंगों से रंगा है और का। नहीं तो जो जहाँ रहता, वहाँ के रंग पहिनता, वहाँ के त्युहार मनाता। काम की तलाश में निकरे हमारे जैसे लोगों ने सबको रंग दिया।"

इसी बीच मंडली की ओर तेजी से लौटती सोमिष्ठा की ओर एक-दो सहेलियों का ध्यान गया। इससे पहले कि कोई उससे कुछ पूछती, अपना बटुआ उठा कर उसने वहाँ से जाने के लिए कदम बढ़ा दिया।

"अरे बड़ो तनिक, चली जाना। का जल्दी है जाने की? उ घर भी वहीं रहेगा अउर उ काम भी तुमरे इंतजार में वहीं पड़ा रहेगा। कोई अउर ना करिहें तुहार हिस्से का काम।" कहते हुए दोपहर में जमने वाली बैठक की धाकड़ ने सोमिष्ठा का हाथ मजबूरी से पकड़ लिया।

"मेरी मैडम का फोन था। उनके घर किसी का एक्सीडेंट हुआ है, वो हॉस्पिटल जा रही हैं। मुझे जाना है, मेरा हाथ छोड़ो, दीदी।"

"अरी चली जाना, तनिक सबर करो। इतनी हड़बड़ी अच्छी नहीं भाई। यह एक घंटा तुम्हार लिए है। आराम से जाओ, यह नहीं कि तनिक आवाज आई नहीं कि दीदी-दीदी पहुँच गई।" कदुआवर ने खिल्ली उड़ते हुए मंडली की ओर देखा। जैसा हमेशा से होता आया है, उस परंपरा

से नया बसा उपनगर महरूम नहीं था। रोबदार की मुसकराहट पर हँसी लुटाने वालीयों तैयार थीं।

"दीदी, मेरी मैडम की बिटिया स्कूल से आने वाली है, मुझे जाना है। आधा घंटा बाद जाऊँगी, तब तक मैडम को हॉस्पिटल जाने में देर हो जाएगी।" सोमिष्ठा ने एक बार फिर मनुहार की।

"तुम लोगन ने ही मैडमों का सिर आसमान पर चढ़ाया है। जे नहीं कि अपने हक की बात करें। उ जब आवाज लगाएँगी तुम्हार जैसी पहुँच जाती हैं पूँछ हिलाती-हिलाती। तनिक सलीके से रहा करो। कम करने का भी ढंग होता है।"

"त्योहार और जन्मदिन पर वो लोग हमको अलग से गिफ्ट देती है वो ठीक है, पर हम उनके लिए कुछ नहीं करें, आप ऐसा कैसे सोचती हो दीदी?" इस बार उसने अपना हाथ छुड़वा लिया और बगीचे से बाहर जाने वाले रास्ते की ओर बढ़ गई।

बगीचे की सारी चहचहाट और चटख रंग सोमिष्ठा अपने साथ ले गई। मंडली में सन्नाटा पसर गया।

"जितना भी काम होवे, दुपहरिया के इस एक घंटे के पीछे सब जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर खट-खट निपटा देती हैं। ये एक घंटा कहाँ जाता है, मालूम नहीं लगता, ऊपर से आज तो मने बिल्कुल खबर ही नहीं हुई। चलो, चलती हूँ आज अगर पगार मिल गई तो जैसे हम लोगन ने सगरे देश को रंगा है, अपना घर भी रंग दूँगी। राशन भरवाऊँगी तो बच्चों के सूखे मुँ पर चमक आजागी, रंग भर जाँगे हम पर भी।" शगुन की बात के साथ ही दोपहर की एक घंटे के लिए जमने वाली बैठक समाप्त हो गई।

"बगीचा बेरंग हो गया।" लक्ष्मी ने मंडली को जाते देखकर कहा।

"हमारे गाम में इतना काम नहीं है, तबही अपना देश छोड़कर यहाँ आए हम। उधर मेहनत का उतना पइसा भी नहीं मिलता। आप कहती हैं कि यहाँ पइसा मिलता है तो भी हम काम ना करें! एक तो पहिले ही फुल टाईम बोलकर सिरफ आठ घंटे की नौकरी करते हैं, उस में भी घंटाभर की छुट्टी अउर फिर रोज-रोज थोड़ी देर से जाऊँ। उ लोग हम पर भरोसा करें भी तो कैसे दीदी?" सोमिष्ठा ने बगीचे से बाहर जाते हुए कहा था।

सोमिष्ठा के जाते ही सब चली गई— "सब रंग चले गए।" उसके कान में धीरे से आवाज आई।

मा
अ

४१०२, लॉर्ड्स अपार्टमेंट्स, फ्लॉट नं. ५,
निकट ओपेजी स्कूल, सेक्टर-१९बी,
झारका-७५००७५, नई दिल्ली
दूरभाष : ९८०१२८८६९
yvandana184@gmail.com